7

शिक्षक शिक्षा का उद्देश्य सिखाने की तकनीकों का ज्ञान या बाल हृदय की गहराइयों की समझ?

शारदा कुमारी*

पिछले दो दशकों से भारतीय समाज का रुझान औपचारिक विद्यालयी शिक्षा के प्रति सकारात्मक रूप से बढ़ा है और इस शिक्षा व्यवस्था की मुख्य धुरी है 'अध्यापक'। अध्यापक वह केंद्र बिंदु है जो समूची शिक्षा व्यवस्था की सफलता विफलता को प्रभावित करता है। सभी अभिभावक अध्यापकों से बहुत आशाएँ एवं अपेक्षाएँ रखते हैं। यद्यपि उच्च शिक्षा की प्रकृति ने स्कूली शिक्षा से जुड़े अध्यापकों की सामाजिक प्रतिष्ठा को प्रभावित करने की कोशिश की है, तथापि पूर्व विद्यालयी शिक्षा से लेकर उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों के अस्तित्व एवं प्रतिष्ठा को कोई नकार नहीं सकता। यदि उनकी प्रतिष्ठा पर कोई आँच आ भी रही है तो उसके लिए या तो स्वयं उनका दृष्टिकोण उत्तरदायी है या फिर उत्तरदायी हैं वे अध्यापक प्रशिक्षण संस्थान जो प्रशिक्षण कार्यक्रमों के दौरान अध्यापकों को यह एहसास दिलाने में नाकामयाब साबित हो रहे हैं कि उनका जीवन उनके विद्यार्थियों के लिए क्यों समर्पित होना चाहिए, अपने विद्यार्थियों के प्रति उनके क्या-क्या उत्तरदायित्व हैं। क्या विद्यालय समय पर पहुँच जाना और पाठ्यक्रम पूरा करने की औपचारिकता पूरी भर कर लेना ही 'अध्यापन कर्म' है या फिर अध्यापन कर्म इससे कहीं और आगे जाता है। विद्यालयों में अकादमिक चर्चा का माहौल क्यों नहीं बन पाता? विद्यालयों में ऐसा परिवेश क्यों नहीं सृजित हो पाता कि बच्चे खुशी-खुशी विद्यालय आयें, ऐसे बहुत से सवालों एवं अनुभवों से जूझता हुआ लेख प्रस्तुत है।

स्वतंत्रता के बाद की अवधि में भारत में शिक्षा का विकास बहुत-सी अवस्थाओं से गुज़रा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सामाजिक-आर्थिक विकास का प्रमुख लक्ष्य था – सामग्री के रूप में उपलब्ध संसाधनों के इष्टतम उपयोग के ज़रिए एक आत्मनिर्भर राष्ट्र का निर्माण करना और एक समतापूर्ण, सहिष्णुतापूर्ण समाज की स्थापना।

राष्ट्रीय नीति के सभी पहलू इसी लक्ष्य पर केंद्रित थे। शिक्षा को सभी राष्ट्रीय प्रयासों का 'मेरूदंड' समझा गया था। स्वतंत्रता पूर्व की अवधि की तरह

* *वरिष्ठ प्रवक्ता,* मंडल शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, आर.के.पुरम, नयी दिल्ली

स्वतंत्रता के बाद की अवधि में भी कई महत्वपूर्ण आयोग की स्थापना हुई, जिन्होंने राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने, क्षेत्रीय असंतुलनों को दूर करने और सामाजिक अन्याय व असमानताओं के उन्मूलन के मुख्य उद्देश्यों को राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली से जोड़ा था।

शिक्षा के संदर्भ में संवैधानिक प्रावधानों और जन आंदोलनों के प्रभावस्वरूप औपचारिक विद्यालयी शिक्षा व्यवस्था ने भारत के जन-मन तक गहरी पैठ जमा ली। पंचसितारानुमा हवेलियों से लेकर कचरे के ढेर के समीप बसी झुग्गियों में रहने वाले हर व्यक्ति की चाहत यह बन गई कि उनके बच्चे 'स्कूल' जाए। पढ़-लिख कर 'बड़े आदमी' बने। नि:शुल्क एवं अनविार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम – 2009 ने जन-मन की इस चाहत को पंख लगा दिए। विद्यालयों की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई, इसी तरह विद्यार्थियों के नामांकन का ग्राफ़ भी बढ़ा पर विद्यार्थी कितना सीख पा रहे हैं, कैसे सीख रहे हैं, यह प्रश्न हमेशा प्रश्न ही बना रहा।

"विद्यार्थी सीख क्यों नहीं पा रहे?" इस चिरंजीवी प्रश्न को केंद्र में रखकर एक प्रदेश विशेष के शिक्षा मंत्री ने शिक्षा अधिकारियों की बैठक बुलाई है। लगभग बीस-पच्चीस मिनट की माथा पच्ची 'तकनीक की और सभ्य शब्दावली में कहें तो ब्रेन स्टोमिंग' के बाद यह सार निकल कर आया कि अध्यापकों के प्रशिक्षण में कोताही बरती गई है, अतः फौरन सेवाकालीन प्रशिक्षण की योजना बनाई जाए और इसी वित्तीय वर्ष में उसे क्रियान्वित किया जाए। इस आदेश के साथ बैठक समाप्त हो गई। मंत्री जी के जाते ही कुछ खुसुर-पुसुर सी शुरू हुई जो धीरे-धीरे तेज बयानों में बदल गई —

"अरे भई कितनी ट्रेनिंग करवाओगे? डायट अपने फंड से करता है, फिर सर्वशिक्षा अभियान, ये रमसा ट्रेनिंग ही ट्रेनिंग लेता रहेगा तो टीचर विद्यालय में पढ़ाएगा कब?"

इस तरह की एक नहीं कई प्रतिक्रियाओं के बावजूद भी कोई यह हिम्मत नहीं जुटा सकता कि अध्यापकों के प्रशिक्षण की नहीं बल्कि ज़रूरत किसी और बात की है। खैर प्रशिक्षण कार्यक्रम के आयोजन की घोषणा कर दी गई। अध्यापकों के खेमे में इस घोषणा की मिली-जुली प्रतिक्रिया हुई। कई शिक्षकों ने आश्चर्य व्यक्त किया – "जनवरी के महीने में प्रशिक्षण! दिस इज़ द टाइम व्हेन वी एचुयली टीच द चिल्ड्रन।"

अब प्रशिक्षण कार्यक्रम की सूचना आ गई। ऐसा लगा जैसे बच्चे के अट्ठानवे प्रतिशत आते-आते रह गए या किसी प्रवेश परीक्षा को देने से पहले ही विफल हो गए।

खुश-नाखुश अध्यापक आपस में ही कुनमुनाते रहे-भुनभुनाते रहे और स्वामिभक्त सेवक की भाँति नियत दिन व समय पर प्रशिक्षण स्थल पर पहुँच गए।

इस बार प्रशिक्षण कार्यक्रम का चरित्र कुछ बदला-बदला सा था। पंजीकरण प्रपत्र के साथ ही पाँच दिवसीय रूपरेखा 'कोर्स डिज़ाइन' दे दिया गया। बैठने की व्यवस्था भी कुछ अलग सी थी। मेजपोश से ढकी गोल मेजें और उसके इर्द-गिर्द पड़ी आरामदेह कुर्सियाँ। एक अध्यापक के मुँह से निकल ही गया, "ये व्यवस्था हमारे लिए ही है न! एकदम आई. आई. एम. के सम्मेलन जैसा चोखा सा सीन लग रहा है।" सभी अध्यापकों को अपनी हैसियत कुछ बढ़ी हुई सी लगी।

इस बार स्रोत व्यक्ति के रूप में शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रहे स्वैच्छिक संगठनों के कार्यकर्त्ताओं ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। पहले तो कंप्यूटर जनित तकनीकी का उपयोग कर भयावह से आँकड़े दिखाए कि देखिए सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा किए गए उपलब्धि परीक्षण लगातार यह दिखा रहे हैं कि बच्चे कुछ नहीं सीख रहे।

बच्चों के सीखने संबंधी उपलब्धि के आँकड़ों में लगातार गिरावट की इस पावर प्वाइंट प्रस्तुति से दो एक अध्यापकों की आंखों में तरलता सी दिखाई दी, दो-एक की आँखों में भय भी दिखाई दिया। बाकी सभी प्रतिभागी निर्विकार भाव से बैठे रहे। मन में शायद कह रहे हों कि "तुम ये सब हमें क्यों बता रहे हो, हमें तो पहले से ही पता है क्योंकि हमारा ही तो किया धरा है सब।" दो एक ने एक-दूसरे को कुहनी भी मारी। आँखों ही आँखों में कहा, "कहीं ये एन.जी.ओ. हमारा स्कूल तो टेक ओवर नहीं करने जा रहा?" फिर अपने आप ही अपने संदेह को झटक डाला टेकओवर कर भी ले तो क्या? हमारी नौकरी थोड़ी न ले लेगा। हम तो सरकारी ठहरे।

आँकड़ों की प्रस्तुति के बाद शिक्षण युक्तियों पर चर्चा की गई कि हमारे पढ़ाने के तरीकों में खामियाँ हैं इसलिए बच्चे सीख नहीं पा रहे, तो आज हम गतिविधि आधारित युक्ति पेश कर रहे हैं।

कहना न होगा, बहुत ही रोचक जीवंत प्रस्तुति थी। अध्यापकों के स्थान पर स्वयं विद्यार्थी बैठे होते तो निहाल हो जाते।

स्वैच्छिक संगठन की उस कार्यकर्ता ने एक छोटी सी चटपटी कहानी हिंदी में सुनाई। पूरे हाव-भाव, सुरताल और लय के साथ। फिर उसी कहानी को अंग्रेजी में सुनाया और इस बार वह श्यामपट्ट पर रंगीन चॉक से कहानी में आए कुछ शब्दों के चित्र भी बनाती जा रही थी और साथ में अंग्रेजी में संबंधित शब्द भी लिख रही थी, जैसे "अचानक बादल छा गए।" श्यामपट्ट के समीप पड़ी मेज़ के इर्द-गिर्द कुर्सियों पर बैठे प्रतिभागियों से लेकर आखिर की मेज़ के इर्द-गिर्द बैठे सभी प्रतिभागी इस प्रस्तुति से चमत्कृत थे। सभी आनंद से सराबोर थे और प्रफुल्लित करने वाली इस प्रस्तुति की सराहना कर रहे थे कि प्रस्तोता ने सवाल किया, "यदि हम इस तरह से अपनी कक्षा में पढ़ाएँ तो क्या मुश्किल है ये? क्या कक्षा में ऐसे पढ़ाया नहीं जा सकता?"

लगभग सभी प्रतिभागियों ने एक गहरी साँस ली और चुप्पी साध ली। प्रस्तोता ने फिर पूछा, "देखिए, आप सभी इस कहानी का भरपूर मज़ा ले रहे थे। आपने देखा कि किस तरह से नई शब्दावली बच्चों को दी गई, किस तरह से उनकी सभी इन्द्रियों का इस्तेमाल किया गया, तो बताइए न! क्या कक्षा में अपने विद्यार्थियों के साथ इसका उपयोग कर सकते हैं या नहीं?"

इस बार भी सभी अध्यापक दम साधे रहे। कोई अपनी नोटबुक में कुचड़-मुचड़ करने लगी तो कोई पर्स खोलकर कुछ खोजने लगी, तो कोई आँखे मूदकर गहन विचार की मुद्रा में चला गया कोई एकटक प्रस्तोता को ही निहाने लगा।

प्रस्तोता कुछ अहसज सी हुई पर एकदम संभल कर अधिकारी के से लहजे में बोली, "भई आप सब इतने अनुभवी हैं, कुछ तो बोलिए।"

कुछ अधेड़नुमा से दिखे अध्यापक ने अपने साथ बैठे नौजवान अध्यापक को कहा, "बेटा तू बोल। हमने तो बहुतेरे सेमिनारों में बोला। अब तू बोल।"

उस नौजवान प्रतिभागी ने प्रोत्साहन पाकर कहा, "जी, कर तो लेंगे पर बच्चे शोर मचावेंगे। प्रिंसिपल अपने कमरे से दौड़ी आवेगी। बोलेगी, चैथी जमात भी संभाली नहीं जाती। आगे से शोर न आए।" इस तर्क ने तो बहुतों को प्रेरित कर दिया। सब कुछ न कुछ बोलने लगे। प्रस्तोता ने फिर अधिकारी वाले लहजे का सहारा लेते हुए कहा, "वन बाई वन। भई टीचर हैं आप लोग। ऐसे किसी की भी बात सुनी जाएगी भला।" पीछे बैठे बुजुर्ग अध्यापक ने कहा, "देखा, घबरा गईं न आप। अब जब बच्चे शोर करेंगे तो हम भी तो उन्हें ऐसे ही चुप करवाएँगे।" इनकी बात पूरी होते ही एक अध्यापक की आवाज़ आई, "ये शोर-वोर की बात तो छोड़ दें। बच्चे हैं तो शोर होगा ही। मेरी समस्या तो चित्रकारी की है। मुझे तो ये सब बनाना आता ही नहीं।" इस पर प्रस्तोता ने कई व्यावहारिक से दिखने वाले समाधान प्रस्तुत किए।

कुछ पल की खामोशी छाई रही फिर समंदर में से उठती हुई लहर की तरह एक गंभीर सी आवाज़ आई– "मैडम, शोर भी संभल जाएगा, नीयत होगी तो चित्रकारी करनी भी आ जाएगी और इससे भी बढ़िया तकनीकों का इस्तेमाल कर लिया जाएगा पर इतना तो बताएँ, इन सबकी ज़रूरत क्या है?"

मतलब!!! प्रस्तोता को कुछ झनझनाहट सी हुई। टी.वी. चैनल पर पारिवारिक कहानियों पर आधारित सीरियल में अचकची सी बात कहने पर कैमरा जैसे पाँच-छह बार घूमता है और झन्नाटेदार संगीत बज उठता है, ठीक कुछ वैसा ही हुआ उस पल उस प्रशिक्षण कक्ष में।

उस प्रतिभागी ने बड़ी ईमानदारी से कहा, "देखिए हम समाज के जिस वर्ग को पढ़ा रहे हैं उन्हें पढ़ाई लिखाई से कोई सरोकार नहीं है। पढ़ना-लिखना सीखना उनकी ज़रूरत नहीं है। ये तो सरकार ने बेवजह का रोग पाल लिया है कि जी सभी को शिक्षा दो। जिसे देखो वही अपने बच्चे की अँगुली थामे मुँह उठाए चला आ रहा है दाखिला दिलाने।"

"जी मेरा बच्चा भी पढ़ लिख जाए तो कुछ बन जाए।" "अरे सभी लोग कुछ बन जाएँगे तो कहारी कौन करेगा। पालकी पर सभी बैठ सकते हैं क्या, पालकी उठाने वाले भी तो चाहिए। बस! सभी को दाखिला दो, सभी को पढ़ाओ ऐसा भी समाज में होता है क्या?

मैडम ये मत समझिए कि हमें पढ़ाने के मज़ेदार तरीके नहीं आते। बात ये है कि हमारे पास पढ़ने कौन आ रहा है, वे, जो न भी पढ़ें तो समाज का कुछ नहीं बिगड़ेगा हम उधमियों को पढ़ा रहे हैं।''

उस नौजवान अध्यापक के मुँह से निकले ये ईमानदार बोल, बोल नहीं बल्कि एक वर्ग विशेष के प्रति संकीर्ण विचार प्रस्तुत आलेख 'अध्यापक जीवन की दुरभि संधियाँ' के कलेवर की नींव है। इन बोलों पर त्वरित प्रतिक्रिया तो यही है कि इस अध्यापक की स्वयं की शिक्षा, परवरिश, और पूर्व सेवा अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम, इसे पाठयोजना, शिक्षण अधिगम

सामग्री, शिक्षण युक्ति जैसे उपकरणों से लैस करने में तो कामयाब कर पाये हैं पर हृदय के कोमल तंतुओं और मस्तिष्क में जमे पूर्वग्रहों की तहों को खोल पाने में असफल रहे हैं। हमारे सामने कुछ ज्वलंत से सवाल आ खड़े होते हैं। और ये सवाल सीधे-सीधे अध्यापकों की तैयारी से जुड़े पाठ्यक्रमों को अपने घेरे में ला खड़ा करते हैं। ई.सी.सी.ई., ई.टी.ई., डी.एल.एड., जे.बी.टी., बी.एड., बी.एल.एड. किसी भी नाम से पुकारिए इन पाठ्क्रमों को, ये पाठ्यक्रम कमोबेश अध्यापक को एक चिंतनशील, मननशील, संवेदनशील और बच्चों से सरोकार रखने वाले प्राणी के रूप में तैयार कर पाने की कोई चेष्टा करते दिखाई नहीं देते। हाँ, इनमें बी.एल.एड. 'दिल्ली विश्वविद्यालय का चार वर्षीय पाठ्यक्रम' कुछ अपवाद या नज़र आता था पर अब वहाँ भी अब वह पहले वाली बात नहीं रही। बचपन, बाल जगत एक विशिष्ट संसार है। अच्छाई-बुराई, मान-अपमान, गुण-दोष, छोटा-बड़ा, सुख-दुख इन सभी के बारे में बच्चों के अपने विचार होते हैं, सुंदरता-कुरूपता की उनकी अपनी कसौटी होती है। बचपन नाम के जादुई महल में प्रवेश करना किसी पाठ्यक्रम द्वारा नहीं सिखाया जाता, बल्कि हर व्यक्ति अपनी तैयारी में बचपन के करिश्माई महल के दरवाजे का या तो पहरेदार बन जाता है या उसके कपाट बंद कर देता है।

किसी भी अध्यापक की तैयारी इस दिशा की तरफ नहीं होती कि वे एक-दूसरे के मन में होने वाली हलचलों को अनुभव कर सकें। एक-दूसरे के विचारों और भावनाओं की दुनिया में पैठ सकें।

श्यामपट्ट के अर्थ के इर्दगिर्द घूम रही सीमित दुनिया की अपेक्षा कक्षा की खिड़की से बाहर झाँकती दुनिया को दिखाने का साहस तो तब पैदा होगा न जब हमने बचपन को समझा और अपने भीतर ज़िंदा बनाए रखा हो।

सैनिकों की तैयारी के संबंध में सुना है कि उन्हें अस्त्र-शस्त्र संचालन के कौशल तो बहुत बाद में सिखाए जाते हैं। सबसे पहले तो उन्हें देश/राष्ट्र की समझ से परिचित करवाया जाता है, देश की आन-बान, गरिमा, प्रेम आदि रंगों से सराबोर किया जाता है, उनमें देशभक्ति के भाव जागृत किए जाते हैं तब कहीं जाकर शस्त्रों का परिचय और फिर उनके संचालन से जुड़े कौशलों में पारंगत करने का प्रशिक्षण व अवसर दिए जाते हैं। पर अध्यापकों से जुड़े पाठ्यक्रम इससे विपरीत हैं। वहाँ पहले दिन से ही बताया जाता है कि –

- अध्यापक ज्ञान की कभी न खत्म होने वाली खान है।
- अध्यापक सभी तरह के ज्ञान रखने वाले प्राणी हैं।
- अध्यापक को 'सुनाने' व 'बोलने' का भरपूर अभ्यास होना चाहिए।
- अध्यापक वह प्राणी है जिसे 'सही उत्तर' सुनने की अपेक्षा व आदत होनी चाहिए।
- अध्यापक के पास सूचनाओं का बड़ा ज़खीरा होना चाहिए। वे सूचनाओं के विक्रेता बनकर सफल अध्यापन कर सकते हैं।
- अध्यापकों को तरह-तरह की शिक्षण तकनीकें आनी चाहिए। ऐसी शिक्षण तकनीकें जो अधिकारी वर्ग को देखने में अच्छी व प्रभावशाली लगती हैं। 'सम्प्रति गतिविधि आधारित शिक्षण की

टीआरपी बहुत ऊँचाई पर जा रही है, भले ही अध्यापक को स्वयं न पता हो कि इस गतिविधि से प्राप्त क्या हो रहा है।'

- अध्यापक को तरह-तरह की शिक्षण अधिगम सामग्री बनाने में निपुण होना चाहिए। शरीर के अंग बताने हो या, पौधे के भाग चार्ट पेपर जो ज़रूर बनाना आना चाहिए।
- अध्यापक को कक्षा में खामोशी की स्थिति बनानी भी आनी चाहिए।
- अध्यापक को भाषा के मानक स्वरूप का प्रयोग करना भी आना चाहिए भले ही बच्चों की भाषा से उसका कोई तालमेल हो या न हो।

इस तरह के अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर जब व्यक्ति 'अध्यापक' बनेगा/बनेगी तो उनसे बाल हृदय की गहराईयों तक उतरने की उम्मीद कैसे की जा सकती है, कैसे अपेक्षा की जा सकती है कि वे कक्षा में सामाजिक समरसता पूर्ण वातावरण की रचना कर सकेंगे कैसे सोचा जा सकता है कि वे सभी बच्चों की ज़रूरतों के प्रति सहिष्णु बनें। उस नौजवान अध्यापक ने सही कहा था – "अगर नीयत नेक है तो सीखने-सिखाने के तरीके खुद ब खुद आख़्तियार किए जा सकते हैं।"